

शब्द

भाग — ७

‘शब्द’ के विषय में अधिकांश व्यक्तियों के मन में कई प्रकार की भ्रान्तियाँ पड़ी हुई हैं, जिन्हें गुरुबाणी के प्रकाश में सुलझाने का प्रयत्न यहां किया जा रहा है।

साधारणतया ‘शब्द’ को अक्षरों तक ही सीमित किया जाता है, तथा बुद्धि मंडल का विषय ही बनाया जाता है। इस प्रकार हम ‘अक्षर रूप शब्द’ की ही व्याख्या तथा कथा-वार्ता करते हैं तथा बाहरी शब्दों के अर्थ करने में ही सन्तुष्ट हुए बैठे हैं।

वास्तव में, यह ‘शब्द’ या ‘बाणी’ आत्म-मंडल ‘नानक मंडल’ ‘ब्रह्म मंडल’ ‘धुर’ की दिव्य ‘वस्तु’ है। यह गुप्त ‘तत्-शब्द’ या ‘अनहद’ बाणी आदि ब्रह्म मंडल में से अवतरित हुई है।

जो ‘आत्मिक अनुभव’ द्वारा ही बूझी, सीझी पहचानी जा सकती है। इस ‘तत्-शब्द’ की ‘अनहद धुन’ को शारीरिक कानों द्वारा सुना नहीं जा सकता, क्योंकि यह बुद्धि मंडल की पकड़ से परे है। इस ‘तत्-शब्द’ को ‘बुद्धि मंडल’ से ऊपर उठकर ‘शब्द-सुरति’ के अभ्यास द्वारा अनुभव मंडल में बूझा-सीझा जा सकता है।

जुगि जुगि बाणी सबदि पछाणी नाउ मीठा मनहि पिआरा ॥ (पृ. 602)

गुर की बाणी सबदि पछाती साचि रहे लिव लाए ॥ (पृ. 1155)

जिस प्रकार ‘धूप’ में से गर्मी, प्रकाश, शक्ति तथा ‘जीवन-रौं’ आदि अलग नहीं की जा सकती — इसी प्रकार ईश्वरीय प्रकाश में से —

बाणी

शब्द

नाम

अमृत

हुकुम

हरि रस

शक्ति

राग-नाद-धुन

प्रेम

सुख-शान्ति

चक्र

आदि-समस्त आत्मिक गुण — जो इसके ताने-बाने में ओत-प्रोत मिले जुले तथा समाये हुए हैं । इन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता ।

इस 'तत-शब्द' की 'धुन' की 'प्रेम-स्वेल' को गुरबाणी यूँ दर्शाती हैं —

अनहद बाणी सबदु वजाए ॥ (पृ. 231)

अनहद बाणी नादु वजाइआ ॥ (पृ. 375)

सचु बाणी गुरु सबदु सुणाए ॥ (पृ. 364)

इका बाणी इकु गुरु इको सबदु वीचारि ॥ (पृ. 646)

सबदे उपजै अम्रित बाणी गुरमुखि आरिख सुणावणिआ ॥ (पृ. 125)

अम्रित सबदु अम्रित हरि बाणी ॥

सतिगुरू सेविऐ रिदै समाणी ॥ (पृ. 119)

गुर का सबदु अम्रित है बाणी ॥

अनदिनु हरि का नामु वरवाणी ॥ (पृ. 1054)

तह अनहद सबद वजहि धुनि बाणी सहजे सहज समाईहे ॥ (पृ. 1069)

गुरबाणी को पढ़ने, सुनने द्वारा, मन को 'नाम' का रंग चढ़ता है — परन्तु यह रंग तभी चढ़ सकता है यदि गुरबाणी के शब्दों की ओर ध्यान दें, या हमारा मन गुरबाणी के आन्तरिक 'भावों' से स्पर्श करे या छूए, अन्यथा हमारे मन पर गुरबाणी की 'आत्म-कला' नहीं घटती । असली 'बात' तो मात्र ध्यान की है । 'ध्यान' बिना पाठ-तोते की भौंति रटन है—जिस कारण हमारा मन गुरबाणी की आन्तरिक 'पारस-कला' से नहीं छूता— तथा इस छुह बिना, मन पर 'पारस-कला' नहीं घटती । यही कारण है कि सारी उम्र अनेक पाठ करते, सुनते हुए भी हमारी मानसिक तथा आत्मिक दशा नहीं बदलती, उन्नत नहीं होती तथा हम आत्मिक जीवन से वंचित रहते हैं ।

इह बाणी जो जीअहु जाणै तिसु अंतरि रवै हरि नामा ॥ (पृ. 797)

गुरबाणी की आन्तरिक आत्मिक भावना को ध्यान द्वारा 'परसना' ही 'जीअहु जाणना' है, जिस से समस्त ईश्वरीय गुण अथवा रस, रंग, प्रेम, चाव, सेवा-भाव आदि सहज ही प्रवेश हो जाते हैं तथा 'अंतरि रवै हरि नामा' की पारस कला घटती है। दूसरे शब्दों में — 'शब्द सुरति के — अन्तर आत्मिक अभ्यास द्वारा — हमारी 'सुरति' 'तत्-शब्द' से 'परसती' है — जिस से हमारी अन्तर-आत्मा में अनहद शब्द का 'प्रकाश' होता है।

इस 'शब्द' तथा 'सुरति' के 'मिलाप' या 'स्पर्श' को ही 'परसना' कहा जाता है, जिस द्वारा गुर शब्दी गोबिंद गजिआ का गुरुवाक् सिद्ध होता है।

शराब के दो अलग-अलग स्वरूप हैं —

1. पहला स्थूल स्वरूप — रंग-बिरंगा, कड़वा-कसैला घोल (alcoholic solution) है।

2. दूसरा सूक्ष्म स्वरूप — सरूर है। जब स्थूल शराब को पिया जाये तो मन, तन, बुद्धि पर अनोखा प्रभाव पड़ता है। इसे 'सरूर' कहा जाता है। सरूर में थरथराता हुआ उत्साह, चाव, मस्ती, हैसला, बेपरवाही तथा उमाह होता है। यह भीतरी सूक्ष्म निजी अनुभव है। यह सूक्ष्म स्वरूप, स्थूल शराब के भीतर गुप्त रूप से प्रविष्ट है, जिसे प्रकट या प्रत्यक्ष करने के लिए शराब को पीना अनिवार्य है। शराब की बोतल को देख कर या दिमागी ज्ञान सुनकर या पढ़कर यह सरूर नहीं आ सकता। ठीक इसी प्रकार —

अक्षररूप 'शब्द' — ईश्वरीय 'प्रकाश' का स्थूल स्वरूप है।

अनहद 'शब्द' — 'ईश्वरीय' प्रकाश का सूक्ष्म तत्-स्वरूप है। जिस में समस्त ईश्वरीय गुण प्रविष्ट तथा प्रवृत्त हैं।

शराब पीने से — शराबी अपने शरीर के अन्दर — शराब के सारे अवगुणों को 'ग्रहण' करता है तथा यह अवगुण शराबी के अन्दर सहज स्वभाव ही प्रवेश तथा प्रवृत्त हो जाते हैं।

इसी प्रकार दिन-रात झूठी 'माया' की संगत करके या 'परस' कर हम 'माया' के समस्त अवगुण ग्रहण कर लेते हैं तथा पलचि पलचि कर सारी उम्र दुख क्लेश भोगते रहते हैं।

इसके विपरीत यदि हम 'साध-संगत' द्वारा 'अनहद बाणी' अथवा 'तत् शब्द'

को अन्तर आत्मा में — ‘शब्द-सुरति’ द्वारा परसें तो हमारे अन्दर समस्त ईश्वरीय गुण सहज ही प्रविष्ट हो जाते हैं, जिससे :—

दिव्य स्वर
आत्मिक सुख
नाम कुमारी
दिव्य मस्ती

में ‘अलमस्त मतवाले हो कर’ — ‘लोक सुखी-परलोक सुहेले’ हो जाते हैं।

इन ईश्वरीय गुणों के संग्रह या ‘तत् शब्द’ को प्रकट करने के लिए —

साध संगत
शब्द-सुरति का अभ्यास
गुरुप्रसादि

की आवश्यकता है ।

परगटि पाहरै जापदा ॥

सभु नावै नो परतापदा ॥

(पृ 71)

जब जवान लड़की की सगाई हो जाती है, तब वह अपने हेने वाले पति की—

आदत्ते

स्वभाव

योग्यता

गुण

रूप

स्वरूप

बात-चीत

चाल-ढाल

व्यक्तित्व

से सम्बन्धित—

आहटें

खबरें

सन्देश

चिट्ठियां

कहानियाँ

सुनती रहती हैं, तथा हृदय में अनेक सूक्ष्म भावनाओं, रीझों, चाव, प्यार से ‘पति’ के

‘मिलाप’ या मुलाकात की प्रेम स्वैपनाओं की उड़ाने भरती रहती हैं।

इस प्रकार उसके हृदय की गहराईयों में ‘पति-प्यार’ धँस, बस, रस, समा कर प्रफुल्लित होता रहता है।

ज्यों-ज्यों उसका ध्यान-सुरति — ‘पति-प्यार’ में रचती, समाती, वृद्ध होती जाती है — त्यों-त्यों माता-पिता तथा ‘मायके’ का मोह कम होता जाता है।

धीरे-धीरे वह ‘बाली’, ‘पति-प्यार’ अथवा ‘चुप-प्रीत’ की गुप्त ‘प्रेम-अग्नि’ में तड़पती हुई विरह के दुख सहती रहती है ।

आखिर में जब उसका विवाह या पति से ‘मिलाप’ होता है अथवा वसल होता है, तब वह पति के तीव्र ‘प्रिम-रस’ में बे-खुद होकर अपना ‘आपा’ पति के चरणों में अर्पण कर देती है, तथा पति के चरणों में रहना ही उसका ‘जीवन’ होता है तथा बैखरीद दासी बनकर सेवा करना ही उसका ‘धर्म’ बन जाता है ।

‘पति-प्यार’ से ‘वसल’ के प्रेम-रस की मदहोशी में उसके पहले से सुने— सुनाये, मन-घड़न्त —

रब्याल

अनुमान

निश्चय

इच्छाएं

आशा-मनसा

सब कुछ अधूरा, अनावश्यक तथा गलत हो जाता है, — जिन्हें वह शीघ्र ही भूल जाती है ।

इस प्रकार ‘सगाई’ से लेकर— वसल तक ‘बाली’ की प्रेम स्वैपनाओं की सूक्ष्म मानसिक उड़ाने ही उसकी—

जिज्ञासा है

कर्म है

धर्म है

जीवन-दिशा है
उद्देश्य है

तथा वसल अथवा 'मिलाप' ही उसकी :

प्राप्ति है

मंजिल है

प्रिम-प्याला है

प्रेम-रस है

चुप-प्रीत है

महा आनन्द है

जिस में 'अलमस्त-मतवाला' होना ही 'बाली' का जीवन मनोरथ अथवा 'ध्येय' है ।

ठीक इसी प्रकार जब 'जीव'— 'गुरू' धारण कर लेता है, (अथवा अमृतपान कर लेता है) तब 'जीव-रूपी-स्त्री' की 'अकाल पुरुष' रूपी 'प्रीतम' से 'सगाई' हो जाती है, इस से आगे 'गुरू' की बख्शिाश द्वारा— 'जीव' को 'साध-संगत' प्राप्त होती है— जिस में विचरण करते हुए— 'जीव-स्त्री' अपने 'पति-परमेश्वर' के —

प्रेम सन्देश

गुण

प्रशंसा

प्यार

की कथा-कहानियाँ पढ़ती-सुनती तथा गुण गाती रहती है । इस प्रकार उस के हृदय में 'पति-परमेश्वर' से —

प्रीत

प्रेम

प्यार

आकर्षण

तड़प

वैराग्य

विह

उत्पन्न होता

बढ़ता

प्रफुल्लित होता

मौलता

उछलता

हुई — 'प्रीत' के सुख लाल रंग' में 'रंग' कर, प्रेम-स्वैपना के मनोभावों द्वारा — प्रेम-पुरुष' अथवा 'परमेश्वर' से 'मिलाप' अथवा 'वसल' की इन्तजार तथा आकर्षण बढ़ता जाता है ।

'बाली' अथवा सामान्य लड़की, तथा 'जीव-स्त्री', अथवा 'जिज्ञासु' के 'प्रेम-खेल' में, अत्यन्त 'अन्तर' तथा 'भिन्नता' है जिसे नीचे स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है ।

बाली का सांसारिक प्यार
मायिकी मंडल का खेल है
सांसारिक 'पति' है
नश्वर है
बाहरी मानसिक क्रिया है
शारीरिक 'मिलाप' का निशाना है
मायिकी मंडल की संगत है
मानसिक मनोभाव हैं
मायिकी मंडल की वृत्ति है
दुख क्लेश है
अस्थायी फीका मानसिक प्यार है
बाहर मुख प्रेम खेल है
आवागमन है
निराशा हो सकती है
'अहम् वादी' है
'मैं-मेरी' है
चिंता-फिकर है
रोष, शिक्वे, शिकायत हैं
मिथ्या प्रीत है
झूठा रिश्ता है

जिज्ञासु का दिव्य प्रेम
आत्म मंडल का खेल है
परमेश्वर 'पति' है
अविनाशी है
अन्तर मुख 'जिज्ञासा' है
आत्मिक मिलाप की मंजिल है
आत्मिक 'साध-संगत' है
आत्मिक प्रेम स्वैपना है
'शब्द-सुरति' का खेल है
सदा सुख तथा आनन्द है
दिव्य प्रेम का सुख रंग है
अन्तर आत्मा में 'चुप प्रीत' है
मुक्ति है
'सदैव-मन-चाव' है
अहम् की अनुपस्थिति है
'तुं-तेरी' है
'सदैव मन चाव है'
शुक्र है
सच्ची प्रीत है
सच्चा 'आत्मिक नाता' है

दूसरे शब्दों में 'बाली' की 'प्रेम-खेल' — 'मायिकी मंडल तक सीमित

है— परन्तु जिज्ञासु की 'सुरति' का अन्तर मुख होकर 'शब्द' के साथ 'मिलाप' करना तथा 'शब्द' में लिवलीन होना 'आत्मिक खेल' की 'मंजिल' है।

जिस प्रकार 'बाली' की सगाई के बाद— 'पति' से मेल या वसल होने तक — 'पति-भक्ति' अथवा याद, सिमरन, सहज स्वभाव स्वतः ही होता रहता है तथा दृढ़ होता रहता है — उसी प्रकार 'जिज्ञासु' की 'प्रभु-मिलाप' के लिए आकांक्षा, आकर्षण, भ्रूव, विरह सहज स्वभाव ही बढ़ती जाती है। परन्तु नुक्ते वाली बात यह है कि यह 'प्रभु-प्रेम' का 'रंग' साध-संगत, अथवा बरखो हुए गुरुमुख प्यारों की संगत में 'छुह' अथवा 'लाग' से ही लगता है।

किरपा करे जिसु पारब्रह्म हेवै साधूसंगु ॥

जिउ जिउ ओहु वधाइए तितु तितु हरि सिउ रंगु ॥ (पृ 71)

इस पंक्ति का अर्थ यह है कि ज्यों-ज्यों 'जीव' साधू या महा पुरुषों की संगत अथवा 'साध संगत' करता है, त्यों-त्यों जिज्ञासु के हृदय में हरि के प्यार के रंग की छुह लगती जाती है। इस प्रकार प्रभु-प्रेम बढ़ता जाता है, तथा 'मिलाप' का आकर्षण तथा वसल की 'भ्रूव' तीव्र होती जाती है।

इसी कारण गुरबाणी में साध संगति की इतनी बढ़ाई की गयी है —

साध संगति भऊ भाऊ सहजु बैरागु है। (वा. भा. गु. 3७13)

साध संगति भै भाइ निज धरु पाइआ। (वा. भा. गु. 3७30)

साधसंगति बिना भाउ नही उपजै भाव बिनु भगति नही हेइ तेरी ॥ (पृ 694)

पिरम पिआला साध संगि भगति वछलु पारस परसै। (वा. भा. गु. 39७12)

साध कै संगि लगै प्रभु मीठा ॥ (पृ. 272)

इस लेख के पिछले भागों में बताया जा चुका है कि 'शब्द' की 'कमाई' के दो 'पक्ष' हैं —

1. अक्षर-स्वरूप शब्द — अथवा गरुमंत्र का जिह्वा द्वारा सिमरन तथा गुरबाणी का पाठ।

2. 'तत्' शब्द' — अथवा 'अक्षर हीन' शब्द — जिसकी सुरति द्वारा ही कमाई हो सकती है।

यह अन्तर-मुख 'आत्मिक खेल' है— जो अति सूक्ष्म तथा कठिन है, जो 'साधू-संग', अथवा बरखो हुए गुरुमुख प्यारों की संगत तथा मार्गदर्शन में ही हो सकती है।

साध संगति गुर सबद कमाई । (वा. भा. गु. 16७)

साध संगति गुर सबद समाला । (वा. भा. गु. 29७)

साध संगति गुर सबद सुरती । (वा. भा. गु. 7७)

साध संगति गुर सबद विलौवै । (वा. भा. गु. 28७)

इस अन्तर्मुख 'शब्द-सुरति' की कमाई के बिना प्रभु के अनुभवी साक्षात् दर्शन नहीं हो सकते ।

एनी अरवी नदरि न आवई जिचरु सबदि न करे बीचारु ॥ (पृ. 1279)

साहिबु मेरा सदा है दिसै सबदु कमाइ ॥ (पृ. 509)

सतिगुर नो सभु को वेखदा जेता जगतु संसारु ॥

डिठै मुकति न होवई जिचरु सबदि न करे वीचारु ॥ (पृ. 594)

सद ही नेडै दूरि न जाणहु ॥

गुर कै सबदि नजीकि पछाणहु ॥ (पृ. 1069)

दूसरे शब्दों में — जब जिज्ञासु — शुरू में शब्द के अक्षर स्वरूप का सिमरन करता है, तब तक 'शब्द-सुरति' का 'मिलाप' न होने के कारण — जिज्ञासु के मन पर माया तथा विकारों का प्रभाव होता रहता है। इस प्रकार उसकी वृत्ति विखण्डित होती रहती है — जो कि जिज्ञासुओं की आम शिकायत होती है ।

फिर भी श्रेष्ठ-उत्तम साध-संगत में, जब कभी 'उन्मन' पर 'शब्द' की 'चोट' लगती है, तब उसे शब्द-सुरति के 'अनुभवी मेल' का 'धुंधला' सी झलक दिखती है । परन्तु वह क्षणभंगुर ही होती है, तथा तत्काल आलोप हो जाती है। हम इन कभी-कभी प्रतिबिम्बित होने वाली झलकों को ही प्रभु के 'दर्शन' समझ कर फूले नहीं समाते ।

सूर्य की 'धूप' — प्रकाश रूप है, तथा 'अन्धकार' — प्रकाश की अनुपस्थिति का नाम है ।

इसी प्रकार — 'परमात्मा' के 'प्रकाश' को ही 'शब्द' कहा गया है तथा इस शब्द-रूपी 'प्रकाश' की अनुपस्थिति को ही 'माया का अन्धकार' या 'भ्रम-भुलाव' कहा जाता है ।

काले घनघोर बादलों में से — कभी-कभी — बिजली की चमक क्षण मात्र दिख कर आलोप हो जाती है । इस क्षण मात्र चमक को सूर्य के 'दर्शन' समझना बड़ी भूल है ।

इसी प्रकार हमारे हृदय के काले घनघोर भ्रम के बादलों में से कभी-कभी

‘आत्मिक बिजली’ या ‘नाम’ की चमक उत्पन्न होती है — जिसे परमात्मा के दर्शन समझना भी ‘भूल है ।

परिणामस्वरूप जिज्ञासु इन झलकों को ही अपनी आत्मिक ‘मंजिल’ अथवा ‘दर्शन’, ‘मिलाप’ या ‘वसल’ समझ लेता है । इस भ्रम-भुलाव द्वारा — सूक्ष्म अहम् उत्पन्न होता है तथा आत्मिक उन्नति रुक जाती है ।

इसी प्रकार परमार्थिक मार्ग पर चलते हुए जिज्ञासु —

रिद्धियाँ-सिद्धियाँ

भविष्य-वाणी

जंत्र-मंत्र

वर-श्राप

योग-साधना

हठ-योग

तांत्रिक-विद्या

ज्ञान-ध्यान

कर्म-धर्म आदि

अनेक मनोकल्पित धार्मिक प्राप्तियों तथा करिश्मों में प्रवृत्त हो कर— मायिकी परछाईयों में गलतान हो जाते हैं, तथा स्वयं रचे हुए धार्मिक बंधनों में फँस जाते हैं। इस प्रकार जिज्ञासु ‘शब्द-सुरति’ की अन्तर्मुख ‘आत्मिक दिशा’ से भटक कर माया के भ्रम-भुलाव में अपना जीवन व्यर्थ खो देता है ।

गिआनु धिआनु सभु कोई रवै ॥

बांधनि बाधिआ सभु जगु भवै ॥

(पृ. 728)

इस प्रकार जिज्ञासु की सुरति-वृत्ति ‘उत्थान’ से उखड़कर रुकावट में बदल जाती है तथा फिर सूक्ष्म अहम् के कारण ‘पतन’ की ओर अग्रसर हो जाती है तथा ‘उल्टा चरवा’ चल पड़ता है — परन्तु जिज्ञासु को इस गिरावट का ज्ञान नहीं होता ।

गुरुबाणी में दर्शाये ‘शब्द-विचार’ के विषय में भी जिज्ञासु जबरदस्त भ्रम में हैं ।

हम ‘अक्षरीय-स्वरूप-शब्द’ अथवा ‘बाणी’ के दिमागी अर्थ तथा कथा-वार्ता को ही ‘शब्द विचार’ समझे हुए हैं। परन्तु वास्तव में अक्षर-हीन, ‘प्रकाश-रूप’ ‘नाम-रूप’, तत्-शब्द’, ‘अनहद शब्द’ में —

सुरति लगानी

लिवलीन होना

**रंग अनुभव करना
रस पान करना
प्रेम-प्याला पीना
अलमस्त मतवाला**

होना ही 'शब्द विचार' है ।

इस विचार को गुरबाणी की निम्नांकित पक्तियाँ सिद्ध करती हैं —

गुरमुखि सबदु वीचारु सदा लिव लाईऐ । (वा. भा. ग. 19@6)

गुरमुखि सबदु वीचारि सचु कमाईआ । (वा. भा. ग. 19@2)

गुरमुखि सबदु विचारि सचि सिवाणीऐ । (वा. भा. ग. 19@4)

गुरमुखि अरथ वीचारि सबदु वरवाणिआ । (वा. भा. ग. 19@3)

अक्षरीय 'शब्द' या गुरबाणी की व्याख्या या विचार — **हमारे दिमाग का 'कार्य' है, परन्तु अक्षर हीन 'तत् शब्द' की विचार — गुप्त, अन्तर्मुख, आत्मिक मंडल की 'चुप-प्रीत' की अनुभवी खेल है — जो किसी विरले भाग्यशाली गुरमुख को ही प्रदान होती है ।**

ते विरले सैसार विचि दरसन जोति पतंग मिलदे ।

ते विरले सैसार विचि सबद सुरति होइ मिरग मरदे ।

ते विरले सैसार विचि चरण कवल हुइ भवर वसदे ।

ते विरले सैसार विचि पिरम सनेही मीन तरदे। (वा. भा. ग. 28@7)

वाहगुरू गुर सबद लै पिरम पिआला चुपि चबोला। (वा. भा. ग. 4@7)

ऐसे जन विरले संसारे ॥

गुर सबदु वीचारहि रहहि निरारे ॥ (पृ 1039)

इसी प्रकार 'शब्द सुणी' के विषय में भी मूल भ्रम पड़ा हुआ है।

पिरु रीसालू ता मिलै जा गुर का सबदु सुणी ॥ (पृ 18)

यहाँ भी हम अक्षरीय 'शब्द' अथवा गुरबाणी को — **शारीरिक कानों द्वारा सुनना ही समझे हुए हैं।** परन्तु वास्तव में जब 'मन' अन्तर्मुख होकर शब्द-सुरति में लीन होता है तब — 'अन्तर-आत्मा में 'अनहद शब्द' की 'धुन' अनुभव द्वारा 'सुनायी' देती है । शारीरिक कान रूपी स्रोत तो इस

अनहद 'धुन' से परे हैं ।

'शब्द' या 'नाम' की अनहद 'धुन' को—

अनुभव करना

रंग अनुभव करना

रस पान करना

विस्मादित होना

ही 'शब्द सुणी' की 'अनुभवी खेल' अथवा 'शब्द विचार' है, जिससे 'शब्द' के प्रकाश मंडल में, 'पिर रिसालू' अथवा 'प्रभु' के दर्शन या मेल हो सकता है ।

अक्षर स्वरूप 'शब्द' अथवा गुरबाणी हमने पढ़नी सुननी है, क्योंकि इसके सुनने से ही हमें अन्तर्मुख होकर 'तत् शब्द' की 'अनहद धुन' की सूझ तथा प्रेरणा मिलेगी। इसलिए जब तक हमारी सुरति बाहर मुख है, हमारे लिए 'अक्षरीय शब्द' अथवा गुरबाणी का पाठ या कीर्तन करना तथा सुनना अति आवश्यक तथा अनिवार्य है।

साध संगति में विचरण करते हुए कथा-कीर्तन सुनकर 'मन' द्रवित होता है तथा 'द्रवित' या पिघले हुए मन पर 'अनहद धुन' की 'छूह', 'लाग' या 'चोट' पड़ती है अथवा 'पारस कला' घटती है, तब हमारा मन उनमन होकर, इलाही 'नाद' की अनहद 'धुन' को 'सुन' कर सर्प की भाँति विस्मादित अवस्था में प्रफुल्लित होता, नृत्य करता, आह्लादित होता, 'शब्द-सुरति' में लीन हो जाता है ।

बिसमु पेखै बिसमु सुणीऐ बिसमादु नदरी आइआ ॥ (पृ 778)

अनहद धुनी मेरा मनु मोहिओ अचरज ता के स्वाद ॥ (पृ 1226)

रात्रि के घने अन्धकार में किसी चीज का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता, केवल अनुमान, अन्दाज़ या 'टोह' ही लगायी जा सकती है जो प्रकाश होने पर 'गलत' हो जाती है ।

'अन्धकार' के भ्रम-भुलाव में हम ठोकरें खाते हैं । अन्धकार में ही मच्छर,

कीड़े, मकोड़े, साँप, बिच्छू आदि निकलते हैं तथा हमें डंक मारते हैं ।

ठीक इसी प्रकार — जब तक हम माया के भ्रम-भुलाव के अन्धकार में विचरण करते हैं, तब तक हमें यह 'पाँच-तत्' (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) सताते हैं, तथा हम मानसिक अज्ञानता के कारण माया में ठोकरें खाते हुए दुखी होते हैं ।

पलचि पलचि सगली मुई झूठे धंधै मोहु ॥ (पृ. 133)

धनु जोबनु दुइ वैरी होए जिन्ही ररवे रंगु लाइ ॥ (पृ. 417)

खिन महि कउड़े होइ गए जितड़े माइआ भोग ॥ (पृ. 135)

हमारी यह दयनीय दशा, उतना समय रहेगी जब तक हमारी अन्तर-आत्मा में 'शब्द' का 'प्रकाश' नहीं होता अथवा गोंबिद नहीं गर्जता ।

'शब्द-सुरति' के 'मिलाप' के बिना, जीव की जो अधोगति होती है, उसे गुरबाणी में यँ दर्शाया गया है —

करहि बिकार विथार धन्ने सुरति सबद बिनु भरमि पाइआ ॥ (पृ. 906)

सबद सुरति बिनु आईऐ जाईऐ ॥ (पृ. 1042)

सबद सुरति बिनु आनै जावै पति खोई आवत जाता हे ॥ (पृ. 1031)

हमने इन पक्तियों का लाखों बार पाठ तथा कीर्त्तन किया होगा, परन्तु इन के गहरे गुप्त, आन्तरिक भाव की ओर कभी ध्यान ही नहीं बिया। हम यह समझकर लापरवाह तथा सन्तुष्ट हुए बैठे हैं कि हमारे पास तो अक्षर रूप 'शब्द' है, इसलिए यह 'शब्द बिना' वाली पक्तियाँ हम पर नहीं लागू होती ।

जिस 'वैवलैन्थ' तथा 'मीटर' (Wavelength and meter) पर जलंधर से आवाज उत्पन्न होती है— उस 'मीटर' पर ही हमारा 'रेडियो' उस आवाज को पकड़ सकता है।

ठीक इसी प्रकार हमारे सूक्ष्म ख्याल या 'मनोभाव' भी एक ही 'वैव लैन्थ' पर एक दूसरे को भेजे या पकड़े जा सकते हैं ।

हमारे सूक्ष्म ख्यालों तथा मनोभावों से भी गहरे तथा बारीक आत्म मंडल के सन्देश या भावनाएं अनुभव द्वारा ही पकड़ी जा सकती हैं ।

जब हमारी सुरति की तार-सिमरन अभ्यास द्वारा अति सूक्ष्म तथा बारीक होकर 'अनुभव' शक्ति की वेवलेंथ पर पहुँच जाये — तब ही भीतरी अनहद-तत-शब्द की धुन को सुनने के योग्य हो सकती हैं ।

परन्तु हमारा बाहर मुख मन-माया के शोर गुल में गलतान है । इस कारण 'मन' — शब्द की सूक्ष्म धुन को पकड़ या सुन नहीं सकता ।

बाहरी माया की 'भगदड़' के शोर-गुल से मन को 'मोड़' कर या 'अलिप्त' होकर ही सुरति शब्द में 'जुड़' सकती है तथा आत्मिक मंडल के 'एकान्त' में ही अनहद शब्द की धुन 'सुनी' जा सकती है ।

इस सूक्ष्म अनुभवी देश के सूक्ष्म, गुप्त प्रेम-स्वैपना को 'अनुभव करना' तथा 'आनन्द उठाना' ही 'शब्द-सुरति' का मिलाप है ।

यह अन्तर-आत्मा में 'शब्द-सुरति' के 'मिलाप' का 'प्रेम-खेल' अत्यंत कठिन और कठोर है जो किसी विरले भाग्यशाली गुरमुख को ही प्राप्त होता है।

जब तक 'शब्द-सुरति' के अभ्यास द्वारा — हमारी सुरति सूक्ष्म तथा बारीक नहीं होती तथा 'आत्म मंडल' की उत्तम, श्रेष्ठ, सूक्ष्म वेवलेंथ (wavelength) पर नहीं पहुँचती तब तक 'जीव' का —

मन मायिकी मंडल में से उठ नहीं सकता,

मन एकान्त नहीं हो सकता ,

मायिकी अंधकार दूर नहीं हो सकता,

आत्म 'प्रकाश' नहीं हो सकता

शब्द-सुरति का अनुभवी मेल नहीं हो सकता

अनहद 'धुन' नहीं सुनाई दे सकती

'वाणिज्य-व्यापार' नहीं हो सकता

'नाम खुमारी नहीं चढ़ती

प्रभु के दर्शन नहीं हो सकते।

दूसरी ओर — यदि गुरबाणी के प्रकाश तथा साध-संगति के मार्ग दर्शन में,

श्रद्धा-भाव तथा प्यार से, 'शब्द-सुरति' के अभ्यास में जुट जाये तब आत्म मंडल के प्रेम-स्वैपना के आकाश में जिज्ञासु की आत्मिक उड़ने लगती हैं, तथा जीव की दिन-दुगनी आत्मिक उन्नति होती जाती है तथा नित्य नवीन आत्मिक चमत्कार के दर्शन तथा अनुभव होते हैं।

इस अति सूक्ष्म 'प्रिम-स्वेल' की 'द्युप-प्रीत' के अनोखे दैवीय करिष्मों को गुरबाणी तथा भाई गुरदास जी ने उचित ढंग से यूं दर्शाया है—

तेरे दरसन कउ केती बिललाइ ॥

विरला को चीनसि गुर सबदि मिलाइ ॥ (पृ 1188)

मोहन मोहिलीआ मनु मेरा समझसि सबदु बीचारे ॥ (पृ 1197)

सबदु चीन्हि आतमु परगासिआ सहजे रहिआ समाई ॥ (पृ 753)

सतिगुर सबदि उजारो दीपा ॥

बिनसिओ अंधकार तिह मंदिररतन कोठड़ी खुल्ही अनूपा ॥ (पृ 821)

जह कह तह भरपूरु सबदु दीपकि दीपायउ ॥ (पृ 1395)

जतु सतु संजमु साचु द्विड़ईआ साच सबदि रसि लीणा ॥ (पृ 907)

सबद सुरति लिव लीणु होइ निरंकार सच खंडि निवासी ।

(वा. भा. ग. 25@18)

आदि से ही, समय-समय पर, 'आत्म-ज्योति'— 'गुरू' अवतार, पैगम्बर, पंच भौतिक देह में मायिकी तथा मानसिक अज्ञानता के अन्धकार को दूर करने के लिए, प्रकट होते रहे। इसी प्रकार, 'आत्म-ज्योति-स्वरूप' गुरू नानक देव जी भी, पंच-भौतिक देह धारण करके, दस बार इन्सानी वेष में आकर संसार की तिमिर मानसिक अज्ञानता को दूर करते रहे। अन्त में गुरसिखों को 'गुरबाणी' अथवा गुरू ग्रंथ साहिब से जोड़ गए ।

इस गुरबाणी में सतिगुरू की अपनी 'ज्योति' अथवा 'प्रकाश-रूप' 'शब्द' का प्रवेश है।

बाणी गुरू गुरू है बाणी विचि बाणी अंम्रितु सारे ॥

गुरु बाणी कहै सेवकु जनु मानै परतरिव गुरू निसतारे ॥ (पृ 982)

इस गुरबाणी के 'अक्षर-स्वरूप' के भीतर 'गुप्त आत्म ज्योति' का 'प्रकाश' है। इसी 'आत्म-प्रकाश' को ही 'शब्द' या 'नाम' भी कहा गया है ।

सचा सतिगुरु सबदु आपारा ॥ तिस दै सबदि निसतरै संसारा ॥ (पृ. 1055)

सबदु गुर पीरा गहरि गंभीरा बिनु सबदै जगु बउरानं ॥ (पृ. 635)

आपे सतिगुरू आपि सबदु जीउ जुगु जुगु भगत पिआरे ॥ (पृ. 246)

सतिगुरु में सबद सबद में सतिगुर है

निरगुन गिआन धिआन समझावै जी ॥ (भा. गु. क. 534)

'शब्द-गुरू' का ज्ञान या सिद्धान्त — हमारी दिमागी समझ तक ही सीमित है । इसी कारण संगत में इस विषय पर सरल लड़ाईयां, वाद-विवाद तथा झगड़े होते हैं।

वास्तव में 'शब्द-गुरू' का विषय त्रि-गुणों से ऊपर, चौथे पद का 'अनुभवी' खेल है।

'शब्द' के दो स्वरूप हैं —

1. 'अक्षर स्वरूप' :- जो गुरबाणी के रूप में अंकित है ।

2. 'प्रकाश स्वरूप' 'परम तत्', 'आत्म रौं', 'नाम', 'ज्योति स्वरूप' है, जो केवल गुर प्रसादि द्वारा ही अनुभव हो सकता है ।

गुरबाणी या 'शब्द' को हम गुरू मानते हैं परन्तु हमारा यह विश्वास — 'उपरी मन' तथा 'बुद्धि' तक सीमित है, तथा गहरे मन, चित्त, अनुभव में नहीं उतरा है। इसी कारण गुरबाणी के आन्तरिक भावों को —

बूझा नहीं

समझा नहीं

माना नहीं

कमाया नहीं

जीअहु नहीं जाना

अनुभव नहीं किया ।

इसी कारण हमारा जीवन-गुरबाणी के आत्मिक 'पक्ष' या 'आन्तरिक आशय' के 'अनुकूल' नहीं है — बल्कि ठीक 'विपरीत' है ।

फिर भी, हम अपनी मानसिक अज्ञानता तथा आत्मिक स्वामियों से बिल्कुल —

बेखबर

बेपरवाह

लापरवाह, तथा जान बूझ कर

'मस्त' हुए पड़े हैं ।

(क्रमशः)

